

Chapter उनहत्तर

नारद मुनि द्वारा द्वारका में भगवान्

कृष्ण के महलों को देखना

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह नारद मुनि भगवान् कृष्ण की गृहस्थ लीलाओं को देखकर चकित हुए और किस तरह उन्होंने भगवान् की स्तुति की।

नरकासुर को मारने के बाद भगवान् कृष्ण ने एकसाथ सोलह हजार कुमारियों को ब्याहा और नारद मुनि ने भगवान् की इस अद्वितीय पारिवारिक स्थिति में उनके विविध कार्यकलापों का अवलोकन करना चाहा। अतः वे द्वारका गये। नारद मुनि सोलह हजार महलों में से एक में प्रविष्ट हुए और उन्होंने देखा कि स्वयं रुक्मिणीदेवी हजारों दासियों के होते हुए भी श्रीकृष्ण की सेवा स्वयं कर रही थीं। ज्योंही भगवान् कृष्ण ने नारद को देखा तो वे अपने बिस्तर से उठ खड़े हुए, उन्हें प्रणाम किया और तब उन्हें अपने आसन पर बैठाया। तब भगवान् ने नारद के पाँव पखारे और उस जल को अपने सिर के ऊपर छिड़का। भगवान् का आचरण इतना आदर्शात्मक था।

भगवान् से थोड़ी देर बातें करने के बाद नारद उनके एक अन्य महल में गये जहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण को उनकी रानी तथा उद्धव के साथ चौसर खेलते देखा। वहाँ से दूसरे महल में जाकर देखा कि भगवान् कृष्ण अपने छोटे से शिशुओं को दुलार रहे थे। जब वे एक अन्य महल में गये तो उन्हें स्नान के लिए जाते देखा, उससे आगे वाले में यज्ञ करते, फिर उससे भी आगे वाले में ब्राह्मणों को भोजन कराते और अन्य महल में ब्राह्मणों का जूठन खाते देखा। एक महल में भगवान् दोपहर का अनुष्ठान कर रहे थे, अन्य में गायत्री मंत्र का मौन जप कर रहे थे, अगले वाले महल में अपने बिस्तर पर सो रहे थे, उससे अगले वाले में अपने मंत्रियों से विचार-विमर्श कर रहे थे और उससे भी आगे वाले में वे सखियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहे थे। कहीं भगवान् ब्राह्मणों को दान दे रहे थे तो अन्य स्थान पर वे अपनी प्रेयसी से हँसी-मजाक कर रहे थे। कहीं और वे परमात्मा का ध्यान कर रहे थे तो कहीं वे अपने आध्यात्मिक गुरु की सेवा कर रहे थे। कहीं वे अपने पुत्र-पुत्रियों के विवाह की व्यवस्था कर रहे थे तो अन्य कहीं वे पशुओं का शिकार करने जा रहे थे। अन्यत्र वे वेश बदल कर यह पता लगा रहे थे कि नागरिक उनके बारे में क्या सोचते हैं।

यह सब देखकर नारद ने भगवान् कृष्ण से कहा, “मैं आपकी योगमाया शक्ति की इन विविधताओं को, जिन्हें मोहग्रस्त सामान्य जीव अनुभव नहीं कर सकते, समझ सकता हूँ क्योंकि मैंने आपके चरणकमलों की सेवा की है। इस तरह मैं परम भाग्यशाली हूँ और मेरी यही इच्छा है कि समस्त लोकों को शुद्ध करने वाली आपकी लीलाओं की महिमा का तीनों लोकों में घूम कर कीर्तन करूँ।”

श्रीकृष्ण ने नारद से कहा कि आप भगवान् के दिव्य ऐश्वर्य को देखकर हैरान न हों और उन्होंने नारद से इस संसार में अपने प्राकट्य का उद्देश्य बतलाया। तत्पश्चात् धर्म के अनुसार मुनि का समुचित आदर किया और नारदजी भगवान् का निरंतर ध्यान करते हुए वहाँ से विदा हुए।

श्रीशुक उवाच

नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् ।
 कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद्विद्वक्षुः स्म नारदः ॥ १ ॥
 चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत्पृथक् ।
 गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ २ ॥
 इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत् ।
 पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादिताम् ॥ ३ ॥
 उत्फुल्लेन्दीवराभोजकह्वारकुमुदोत्पलैः ।
 छुरितेषु सरःसूच्यैः कूजितां हंससारसैः ॥ ४ ॥
 प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ।
 महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥
 विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः
 शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः ।
 संसिक्तमार्गाङ्गनवीथिदेहलीं
 पतत्पताकध्वजवारितातपाम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; नरकम्—नरकासुर को; निहतम्—मारा गया; श्रुत्वा—सुनकर; तथा—भी; उद्वाहम्—विवाह; च—तथा; योषिताम्—स्त्रियों के साथ; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; एकेन—एक; बह्वीनाम्—अनेकों के साथ; तत्—वह; दिद्वक्षुः—देखना चाहते हुए; स्म—निस्सन्देह; नारदः—नारद; चित्रम्—अद्भुत; बत—हाय; एतत्—यह; एकेन—एकाकी; वपुषा—शरीर से; युगपत्—एकसाथ; पृथक्—भिन्न; गृहेषु—घरों में; द्वि—दो बार; अष्ट—आठ; साहस्रम्—हजार; स्त्रियः—स्त्रियाँ; एकः—अकेला; उदावहत्—विवाह कर लिया; इति—इस प्रकार; उत्सुकः—उत्सुक; द्वारवतीम्—द्वारका में; देव—देवताओं के; ऋषिः—मुनि, नारद; द्रष्टुम्—देखने के लिए; आगमत्—आये; पुष्पित—फूल खिला हुआ; उपवन—बागों में; आराम—तथा विहार उद्यानों; द्विज—पक्षियों; अलि—तथा भौंरों के; कुल—झुंडों के साथ; नादिताम्—ध्वनित; उत्फुल्ल—खिला हुआ; इन्दीवर—नीले कमल; अभोज—दिन में खिलने वाले कमल; कह्वार—सफेद कमल; कुमुद—चाँदनी रात में खिलने वाला कमल; उत्पलैः—जल की कुमुदिनियों से; छुरितेषु—पूरित; सरःसु—झीलों में; सूच्यैः—जोर जोर; कूजिताम्—आवाज से पूरित; हंस—हंस; सारसैः—तथा सारसों से; प्रासाद—महलों; लक्षैः—लाखों; नवभिः—नौ; जुष्टाम्—अलंकृत; स्फाटिक—स्फटिक के; राजतैः—तथा चाँदी से बने; महा-मरकत—महान् मरकत मणियों से; प्रख्यैः—जगमगाते; स्वर्ण—सोने; रत्न—तथा रत्नों के; परिच्छदैः—सजावटों से; विभक्त—क्रम से विभाजित; रथ्या—मुख्य गलियों; पथ—सड़कों; चत्वर—चौराहों; आपणैः—तथा बाजार-स्थलों से; शाला-सभाभिः—घरों के समूह सहित; रुचिराम्—मनोहर; सुर—देवताओं के; आलयैः—मन्दिरों से; संसिक्त—जल से सींची; मार्ग—सड़कें; अङ्गन—आँगन; वीथि—व्यापारिक मार्ग; देहलीम्—तथा उपवन; पतत्—उड़ते हुए; पताक—झंडों से युक्त; ध्वज—झंडे के डंडों से (ध्वज दण्ड); वारित—दूर किये हुए; आतपाम्—सूर्य की गर्मी से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब नारदमुनि ने सुना कि भगवान् कृष्ण ने नरकासुर का वध कर दिया है और अकेले अनेक स्त्रियों के साथ विवाह कर लिया है, तो नारदमुनि के मन में

भगवान् को इस स्थिति में देखने की इच्छा हुई। उन्होंने सोचा, “यह अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि एक ही शरीर में भगवान् ने एकसाथ सोलह हजार स्त्रियों से विवाह कर लिया और वह भी अलग अलग महलों में।” इस तरह देवर्षि उत्सुकतापूर्वक द्वारका गये।

यह नगर बगीचों तथा उद्यानों से युक्त था जिसके आसपास पक्षियों तथा भौरों की ध्वनि गुंजरित थी। इसके सरोवर खिले हुए इन्दीवर, अम्भोज, कह्लार, कुमुद तथा उत्पल से भरे हुए थे और हंसों तथा सारसों की बोलियों से गुंजायमान थे। द्वारका को नौ लाख राजमहलों के होने का गर्व था। ये सारे महल स्फटिक तथा चाँदी के बने थे और विशाल मरकत मणियों से जाज्वल्यमान थे। इन महलों के भीतर साज-सामान पर सोने तथा रत्नों की सजावट थी। यातायात के लिए व्यवस्थित गलियाँ, सड़कें, चौराहे तथा बाजार थे और इस मनोहर नगर में अनेक सभाभवन तथा देवमन्दिर शोभा को बढ़ाने वाले थे। सड़कें, आँगन, व्यापारिक मार्ग तथा घरों के आँगन जल से सींचे हुए थे और लट्टों से लहरा रहे झंडों से सूर्य की गर्मी से छाया पा रहे थे।

तात्पर्य : लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद ने द्वारका नगरी का सुन्दर वर्णन इस प्रकार किया है : “इस विषय में कि श्रीकृष्ण अनेक पत्नियों के साथ किस तरह गृहस्थी चला रहे हैं जिज्ञासा होने के कारण नारदजी को इन लीलाओं के दर्शन करने की इच्छा हुई। अतएव वे श्रीकृष्ण के विभिन्न घरों को देखने चल पड़े। जब नारद द्वारका पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वाटिकाएँ और उद्यान रंगबिरंगे फूलों से पूर्ण हैं और फलों की वाटिकाएँ अनेक प्रकार के फलों से लदी हुई हैं। सुन्दर पक्षी चहचहा रहे थे और मोर हर्ष से कुहक रहे थे। वहाँ ताल तथा सरोवर भी थे, जो रक्तकमलों तथा नीलकमलों से भरे थे और किसी किसी जगह पर नाना प्रकार की कुमुदिनियाँ खिली थीं। जलाशयों में सुन्दर हंस तथा सारस भरे हुए थे और उनकी ध्वनि चारों ओर गूँज रही थी। नगर में चाँदी से बने हुए द्वारों वाले, उच्च कोटि के संगमरमर से बने हुए नौ लाख विशाल महल थे। गृहों तथा महलों के स्तम्भ पारस पत्थर, नीलम तथा मरकत मणियों से सज्जित थे और फर्श से सुन्दर प्रभा चमकती थी। मुख्य पथ, गलियाँ, चौराहें तथा बाजार बहुत ही सुन्दर ढंग से सजाये गये थे। सम्पूर्ण नगर विविध प्रकार के शिल्प सौन्दर्य वाले गृहों, सभाभवनों तथा देवमन्दिरों से पूर्ण था। ये सब मिलकर द्वारका को देदीप्यमान

नगर बना रहे थे। प्रशस्त पथ, चौराहें, गलियाँ तथा मार्ग और प्रत्येक घर के आँगन अत्यन्त स्वच्छ थे। प्रत्येक मार्ग के दोनों ओर झाड़ियाँ तथा समान अन्तर पर बड़े बड़े वृक्ष थे, जो छाया प्रदान करते थे ताकि पथिकों को धूप से कष्ट न हो।”

तस्यामन्तःपुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्यपैः ।

हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्टा कात्स्न्येन दर्शितम् ॥ ७ ॥

तत्र षोडशभिः सद्यसहस्रैः समलङ्कृतम् ।

विवेशैकतोमं शौरैः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उस (द्वारका) में; अन्तः-पुरम्—रनिवास; श्री-मत्—ऐश्वर्यवान्; अर्चितम्—पूजित; सर्व—सभी; धिष्य—विभिन्न लोकों के; पैः—पालकों द्वारा; हरेः—भगवान् हरि का; स्व—निजी; कौशलम्—कौशल; यत्र—जहाँ; त्वष्टा—त्वष्टा (स्वर्ग के शिल्पी विश्वकर्मा); कात्स्न्येन—पूर्णतया; दर्शितम्—दिखलाया गया; तत्र—वहाँ; षोडशभिः—सोलह; सद्य—घरों द्वारा; सहस्रैः—हजार; समलङ्कृतम्—सुंदर बनाया हुआ; विवेश—(नारद) प्रविष्ट हुए; एकतमम्—उनमें से एक; शौरैः—भगवान् कृष्ण की; पत्नीनाम्—पत्नियों के; भवनम्—महल; महत्—विशाल।

द्वारका नगर में एक सुन्दर अन्तःपुर था, जो लोकपालों द्वारा पूजित था। यह प्रदेश, जहाँ विश्वकर्मा ने अपनी सारी दैवी निपुणता दिखलाई थी भगवान् हरि का रिहायशी क्षेत्र था अतः इसे भगवान् कृष्ण की रानियों के सोलह हजार महलों से खूब सजाया गया था। नारदमुनि इन्हीं विशाल महलों में से एक में प्रविष्ट हुए।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि त्वष्टा अर्थात् विश्वकर्मा ने भगवान् की निपुणता प्रदर्शित की अतः वह ऐसे सुन्दर महल बना सका। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं: “संसार के बड़े बड़े राजा तथा राजकुमार इन महलों को देखने के लिए (भगवान् कृष्ण की) पूजा करने आते थे। इसकी शिल्प योजना देवताओं के शिल्पी स्वयं विश्वकर्मा ने बनाई थी और इन महलों के निर्माण में उसने अपनी सारी प्रतिभा तथा कौशल का प्रदर्शन किया था।”

विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भैर्वैदूर्यफलकोत्तमैः ।

इन्द्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्या चाहतत्विषा ॥ ९ ॥

वितानैर्निर्मितैस्त्वष्टा मुक्तादामविलम्बिभिः ।

दान्तरासनपर्यङ्कैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥ १० ॥

दासीभिर्निष्ककण्ठीभिः सुवासोभिरलङ्कृतम् ।

पुम्भिः सकञ्चुकोष्णीष सुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥ ११ ॥

रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्त-

ध्वान्तं विचित्रवलभीषु शिखण्डिनोऽङ्ग ।

नृत्यन्ति यत्र विहितागुरुधूपमक्षै-

निर्यान्तमीक्ष्य घनबुद्ध्य उन्नदन्तः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

विष्टम्—टिका; विद्रुम—मूँगे के; स्तम्भैः—ख भों द्वारा; वैदूर्य—वैदूर्य मणियों के; फलक—सजावटी आवरणों से युक्त; उत्तमैः—उत्कृष्ट; इन्द्रनील-मयैः—नीलम से सजित; कुड्यैः—दीवालों से; जगत्या—फर्श से; च—तथा; अहत—निरन्तर; त्विषा—तेज से; वितानैः—चँदोवों से; निर्मितैः—निर्मित; त्वष्ट्रा—विश्वकर्मा द्वारा; मुक्ता-दाम—मोतियों की लड़ियों से; विलम्बिभिः—लटकनों से; दानैः—हाथी दाँत के; आसन—आसनों से; पर्यङ्कैः—तथा पलंगों से; मणि—मणियों; उत्तम—अतीव सुन्दर; परिष्कृतैः—अलंकृत; दासीभिः—दासियों से; निष्क—गले का पेंडल, लॉकेट; कण्ठीभिः—जिनके कण्ठों में; सु-वासोभिः—सुन्दर वस्त्र पहने; अलङ्कृतम्—अलंकृत; पुम्भिः—मनुष्यों द्वारा; स-कञ्चुक—कवच पहने; उष्णीष—साफा; सु-वस्त्र—सुन्दर कपड़े; मणि—मणिजटित; कुण्डलैः—तथा कुण्डलों से; रत्न—रत्नजटित; प्रदीप—दीपकों के; निकर—समूह; द्युतिभिः—प्रकाश से; निरस्त—भगाया हुआ; ध्वान्तम्—अंधेरा; विचित्र—विविध प्रकार के; वलभीषु—छज्जों पर; शिखण्डिनः—मोर; अङ्ग—हे प्रिय (राजा परीक्षित); नृत्यन्ति—नाचते हैं; यत्र—जहाँ; विहित—रखे गये; अगुरु—अगुरु; धूपम्—धूप; अक्षैः—झरोखों से; निर्यान्तम्—बाहर जाती हुई; ईक्ष्य—देखकर; घन—बादल; बुद्ध्यः—समझते हुए; उन्नदन्तः—जोर से चिल्लाते, कूकते।

महल को साधने वाले मूँगे के ख भों में वैदूर्य मणि जड़े थे। दीवालों पर नीलम जड़े थे और फर्श स्थायी-चमक से चमक रहे थे। उस महल में त्वष्ट्रा ने चँदोवे बनाये थे जिनसे मोती की लड़ें लटक रही थीं। आसन तथा पलंग हाथी के दाँत तथा बहुमूल्य रत्नों से बने हुए थे। उनकी सेवा में अनेक सुवस्त्राभूषित दासियाँ थीं जो अपने गलों में लॉकेट पहने थीं। साथ ही कवचधारी रक्षक थे, जो साफा, सुन्दर वर्दी तथा रत्नजटित कुण्डल पहने थे। अनेक रत्नजटित दीपों का प्रकाश महल के अंधकार को दूर करने वाला था। हे राजन्, महल के छज्जों पर जोर जोर से कुहक रहे मोर नाच रहे थे, जो जालीदार खिड़कियों के छेदों से निकल रहे सुगन्धित अगुरु को देखकर भ्रम से बादल समझ रहे थे।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, “इतना अधिक सुगन्धित धूप जलाया जा रहा था कि सुगन्धित धुआँ खिड़कियों के बाहर आ रहा था। मयूरों को उस धुएँ से भ्रम हो गया जिससे वे उन्हें मेघ समझ कर हर्ष से नृत्य करने लगे थे। अनेक दासियों ने सोने के हार, चूड़ियाँ तथा सुन्दर साड़ियाँ पहन रखी थीं। अनेक दासों ने उत्तम कुर्ते, साफे तथा रत्नजटित कुण्डल पहन रखे थे। वे सभी दास-दासियाँ अत्यन्त सुन्दर थे और विभिन्न गृहकार्यों में संलग्न थे।”

तस्मिन्समानगुणरूपवयःसुवेष-

दासीसहस्रयुतयानुसवं गृहिण्या ।

विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्म-
दण्डेन सात्वतपतिं परिवीजयन्त्या ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उसमें; समान—बराबर; गुण—निजी गुण; रूप—सौन्दर्य; वयः—तारुण्य तथा सुन्दर वेशभूषा; सु-वेष—तथा सुंदर वस्त्र; दासी—दासियों द्वारा; सहस्र—एक हजार; युतया—युक्त; अनुसवम्—प्रतिक्षण; गृहिण्या—अपनी पत्नी समेत; विप्रः—विद्वान् ब्राह्मण (नारद) ने; ददर्श—देखा; चमर—चमरी की पूँछ के; व्यजनेन—पंखे से; रुक्म—सोने के; दण्डेन—मूठ वाली; सात्वत-पतिम्—सात्वतों के स्वामी, श्रीकृष्ण; परिवीजयन्त्या—पंखा झलते हुए।

उस महल में विद्वान् ब्राह्मण ने सात्वत पति श्रीकृष्ण को उनकी पत्नी के साथ देखा जो सोने की मूठ वाली चामर से पंखा झल रही थीं। वे इस तरह से स्वयं उनकी सेवा कर रही थीं यद्यपि उनकी सेवा में निरन्तर एक हजार दासियाँ लगी थीं जो अपने निजी चरित्र, सौन्दर्य, तारुण्य तथा सुन्दर वेशभूषा में उन्हीं के समान थीं।

तं सन्निरिक्ष्य भगवान्सहसोत्थितश्री-
पर्यङ्कतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ।
आनम्य पादयुगलं शिरसा किरिट-
जुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (नारद को); सन्निरिक्ष्य—देखकर; भगवान्—भगवान्; सहसा—तुरन्त; उत्थित—उठ गये; श्री—लक्ष्मी, रानी रुक्मिणी के; पर्यङ्कतः—पलंग से; सकल—सारे; धर्म—धर्म के; भृताम्—धारण करने वाले; वरिष्ठः—श्रेष्ठ; आनम्य—झुककर; पाद-युगलम्—दोनों पैरों को; शिरसा—अपने सिर से; किरिट—मुकुट से; जुष्टेन—युक्त; स-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर; अवीविशत्—बैठाया; आसने—आसन पर; स्वे—अपने, निजी।

भगवान् धर्म के सबसे बड़े धारक हैं। अतएव जब उन्होंने नारद को देखा तो वे तुरन्त श्री देवी के पलंग पर से उठ खड़े हुए, नारद के चरणों पर मुकुट युक्त सिर को नवाया और अपने हाथ जोड़कर मुनि को अपने आसन पर बिठाया।

तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना
बिभ्रज्जगद्गुरुतमोऽपि सतां पतिर्हि ।
ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनाम युक्तं
तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; अवनिज्य—धोकर; चरणौ—पाँव; तत्—वह; अपः—जल; स्व—अपने; मूर्ध्ना—सिर पर; बिभ्रत्—लेते हुए; जगत्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के; गुरु-तमः—परम गुरु; अपि—यद्यपि; सताम्—सन्त भक्तों के; पतिः—स्वामी; हि—निस्सन्देह; ब्रह्मण्य—ब्राह्मणों का पक्ष लेने वाले; देवः—प्रभु; इति—इस प्रकार कहे गये; यत्—चूँकि; गुण—गुण; नाम—नाम; युक्तम्—उपयुक्त; तस्य—उसका; एव—निस्सन्देह; यत्—जिसके; चरण—चरणों का; शौचम्—धोना, प्रक्षालन; अशेष—पूर्ण; तीर्थम्—पवित्र स्थान।

भगवान् ने नारद के चरण पखारे और उस जल को अपने सिर पर धारण किया। यद्यपि भगवान् कृष्ण ब्रह्माण्ड के परम गुरु हैं तथा अपने भक्तों के स्वामी हैं किन्तु इस तरह से आचरण करना उनके लिए उपयुक्त था क्योंकि उनका नाम ब्रह्मण्यदेव है अर्थात् “ब्राह्मणों का पक्ष लेने वाले भगवान्।” इस तरह श्रीकृष्ण ने नारदमुनि के चरण पखार कर उनका सम्मान किया यद्यपि भगवान् के ही चरणों को धोने वाला जल गंगा बन जाता है, जोकि परम तीर्थ हैं।

तात्पर्य : चूँकि भगवान् कृष्ण के चरणकमल सर्वाधिक पावन गंगा के उद्गम हैं अतएव नारदमुनि के चरण पखार कर भगवान् के लिए अपने आप को शुद्ध करना आवश्यक नहीं था। प्रत्युत, जैसाकि श्रील प्रभुपाद बतलाते हैं, “द्वारका में भगवान् कृष्ण पूर्ण मानव की लीला का आनन्द ले रहे थे। अतएव जब उन्होंने नारदमुनि के चरणों को पखारकर उस जल को अपने सिर पर धारण किया, तो नारद ने आपत्ति नहीं की क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि भगवान् ने हर एक को यह शिक्षा देने के लिए ऐसा किया है कि किस तरह सन्त पुरुषों का आदर किया जाता है।”

सम्पूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो

नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ।

वाण्याभिभाष्य मितयामृतमिष्टया तं

प्राह प्रभो भगवते करवाम हे किम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सम्पूज्य—अच्छी तरह पूजा करके; देव—देवताओं में; ऋषि—ऋषि; वर्यम्—सर्वोच्च; ऋषिः—ऋषि; पुराणः—आदि; नारायणः—भगवान् नारायण; नर-सखः—नर के मित्र; विधिना—शास्त्र द्वारा; उदितेन—आदिष्ट; वाण्या—वाणी से; अभिभाष्य—कह कर; मितया—नपी-तुली; अमृत—अमृत से; मिष्टया—मधुर; तम्—उसे, नारद को; प्राह—सम्बोधित किया; प्रभो—हे स्वामी; भगवते—भगवान् के लिए; करवाम—हम कर सकते हैं; हे—ओ; किम्—क्या।

वैदिक आदेशों के अनुसार देवर्षि की समुचित पूजा करने के बाद, नर के मित्र आदि ऋषि नारायण, भगवान् कृष्ण, ने नारद से बातें कीं और भगवान् की नपी-तुली वाणी अमृत की तरह मधुर थी। अन्त में भगवान् ने नारद से पूछा, “हे प्रभु एवं स्वामी, हम आपके लिए क्या कर सकते हैं?”

तात्पर्य : इस श्लोक में नारायणो नरसखः शब्द सूचित करते हैं कि कृष्ण साक्षात् नारायण हैं, जो ऋषि नर के मित्र रूप में प्रकट हुए थे। दूसरे शब्दों में, कृष्ण ऋषि पुराणः हैं अर्थात् आदि तथा परम गुरु हैं। फिर भी, वैदिक आदेशों का पालन करते हुए (विधिनोदितेन) कि क्षत्रिय को ब्राह्मणों की

पूजा करनी चाहिए। भगवान् कृष्ण ने हर्ष पूर्वक अपने शुद्ध भक्त नारद मुनि की पूजा की।

श्रीनारद उवाच

नैवाद्भुतं त्वयि विभोऽखिललोकनाथे
मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम् ।
निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां
स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

श्री-नारदः उवाच—श्री नारद ने कहा; न—नहीं; एव—तनिक भी; अद्भुतम्—आश्चर्यजनक; त्वयि—आपके लिए; विभो—हे सर्वशक्तिमान; अखिल—समस्त; लोक—लोकों के; नाथे—शासक के लिए; मैत्री—मित्रता; जनेषु—लोगों में; सकलेषु—समस्त; दमः—दमन; खलानाम्—ईर्ष्यालुओं के; निःश्रेयसाय—सर्वोच्च लाभ के लिए; हि—निस्सन्देह; जगत्—ब्रह्माण्ड के; स्थिति—पालन; रक्षणाभ्याम्—तथा सुरक्षा द्वारा; स्वैर—स्वेच्छा से; अवतारः—अवतार; उरु-गाय—हे विश्ववन्द्य; विदाम—हम जानते हैं; सुष्ठु—भलीभाँति।

श्री नारद ने कहा : हे सर्वशक्तिमान, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि समस्त जगतों के शासक आप सारे लोगों से मित्रता प्रदर्शित करते हुए भी दुष्टों का दमन करते हैं। जैसा कि हम सभी लोग भलीभाँति जानते हैं आप इस ब्रह्माण्ड में इसके पालन तथा रक्षण के द्वारा परम लाभ प्रदान करने के लिए स्वेच्छा से अवतरित होते हैं।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं वस्तुतः सारे जीव भगवान् के दास हैं। उन्होंने व्याख्या के लिए पद्म पुराण का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

अकारेणोच्यते विष्णुः श्रीरुकारेण कथ्यते ।

मकारस्तु तयोर्दासः पञ्चविंशः प्रकीर्तितः ॥

“ [ॐ मंत्र में] अ अक्षर भगवान् विष्णु का सूचक है और उ देवीश्री का तथा म उनके दास का सूचक है, जो पच्चीसवाँ तत्त्व है।” पच्चीसवाँ तत्त्व जीव है। प्रत्येक जीव ईश्वर का दास है और ईश्वर हर जीव के असली मित्र हैं। इस तरह जब भगवान्, जरासन्ध जैसे दुष्ट व्यक्तियों को दण्डित भी करते हैं, तो वह दण्ड एक तरह से मित्रता जैसा होता है क्योंकि भगवान् द्वारा दिया जाने वाला दण्ड तथा उनका आशीर्वाद दोनों ही जीव के लाभ हेतु हैं।

दृष्टं तवाङ्घ्रियुगलं जनतापवर्गं
ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं

ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

दृष्टम्—देखे हुए; तव—तुम्हारे; अङ्घ्रि—पैरों की; युगलम्—जोड़ी; जनता—अपने भक्तों के लिए; अपवर्गम्—मोक्ष का उद्गम; ब्रह्म-आदिभिः—ब्रह्मा जैसे व्यक्तियों के द्वारा; हृदि—हृदय में; विचिन्त्यम्—सोचते हुए; अगाध—अथाह; बोधैः—बुद्धि से; संसार—भौतिक जीवन रूपी; कूप—कुएँ में; पतित—गिरे हुआँ के; उत्तरण—उद्धार के लिए; अवलम्बम्—शरण; ध्यायन्—निरन्तर सोचते हुए; चरामि—विचरण करता हूँ; अनुगृहाण—आशीर्वाद दें; यथा—जिससे; स्मृतिः—स्मरणशक्ति; स्यात्—हो।

अब मैंने आपके उन चरणों के दर्शन किये हैं, जो आपके भक्तों को मोक्ष प्रदान करते हैं तथा जिन्हें ब्रह्मा तथा अन्य अथाह बुद्धि वाले महापुरुष भी केवल अपने हृदयों में ध्यान कर सकते हैं किन्तु जो भवकूप में गिर चुके हैं, वे उद्धार हेतु जिनकी शरण ग्रहण करते हैं। आप मुझ पर कृपालु हों जिससे विचरण करते हुए मैं निरन्तर आपका स्मरण कर सकूँ। कृपा करके मुझे शक्ति दें कि मैं आपका स्मरण कर सकूँ।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने नारद मुनि से पूछा था, “हम आपके लिए क्या कर सकते हैं?” और यहाँ नारद उत्तर दे रहे हैं। नारद मुनि भगवान् कृष्ण के शुद्ध भक्त हैं अतः उनकी प्रार्थना दिव्य है।

ततोऽन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः ।

योगेश्वरेश्वरस्याङ्ग योगमायाविवित्सया ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अन्यत्—दूसरे; आविशत्—प्रवेश किया; गेहम्—आवास में; कृष्ण-पत्न्याः—कृष्ण की पत्नी के; सः—वह; नारदः—नारदमुनि; योग-ईश्वर—योगेश्वरों के; ईश्वरस्य—ईश्वर के; अङ्ग—हे राजा; योग-माया—मोह की आध्यात्मिक शक्ति; विवित्सया—जानने की इच्छा से।

हे राजन्, तब नारद ने भगवान् कृष्ण की दूसरी पत्नी के महल में प्रवेश किया। वे योगेश्वरों के ईश्वर की आध्यात्मिक शक्ति देखने के लिए उत्सुक थे।

दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च ।

पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ २० ॥

पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदायातो भवानिति ।

क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णेस्मदादिभिः ॥ २१ ॥

अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मन्जन्मैतच्छोभनं कुरु ।

स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद्गृहम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

दीव्यन्तम्—खेलते हुए; अक्षैः—चौसर से; तत्र—वहाँ; अपि—निस्सन्देह; प्रियया—अपनी प्रिया के साथ; च—तथा; उद्धवेन—उद्धव के साथ; च—भी; पूजितः—पूजित; परया—दिव्य; भक्त्या—भक्ति द्वारा; प्रत्युत्थान—अपने आसन से खड़े

होकर; आसन—आसन प्रदान करके; आदिभिः—इत्यादि से; पृष्ठः—पूछा; च—तथा; अविदुषा—अज्ञानी द्वारा; इव—मानो; असौ—वह, नारद; कदा—कब; आयातः—आये हुए; भवान्—आप; इति—इस प्रकार; क्रियते—करने की इच्छा से; किम्—क्या; नु—निस्सन्देह; पूर्णानाम्—जो पूर्ण हैं उनके द्वारा; अपूर्णैः—जो पूर्ण नहीं हैं उनके द्वारा; अस्मत्—आदिभिः—हम जैसे के द्वारा; अथ अपि—तो भी; ब्रूहि—कृपा करके कहें; नः—हमसे; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; जन्म—हमारा जन्म; एतत्—यह; शोभनम्—शुभ; कुरु—कीजिये; सः—वह, नारद; तु—लेकिन; विस्मितः—चकित; उत्थाय—उठकर; तूष्णीम्—चुपचाप; अन्यत्—अन्यत्र; अगात्—चले गये; गृहम्—महल में।

वहाँ उन्होंने भगवान् को अपनी प्रिया तथा अपने मित्र उद्धव के साथ चौसर खेलते देखा। भगवान् कृष्ण ने खड़े होकर और उन्हें आसन देकर नारदजी की पूजा की और तब उनसे इस तरह पूछा मानो वे कुछ जानते ही न हों, “आप कब आये? हम जैसे अपूर्ण व्यक्ति आप जैसे पूर्ण व्यक्तियों के लिए क्या कर सकते हैं? हे ब्राह्मण, जैसा भी हो, कृपा करके मेरे जीवन को शुभ बना दें।” ऐसा कहे जाने पर नारद चकित हो गए। वे चुपचाप खड़े रहे और अन्य महल में चले गये।

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद बतलाते हैं कि जब नारद दूसरे महल में आये तो “कृष्ण ने ऐसा अभिनय किया मानो रुक्मिणी के महल में जो कुछ हुआ था उसे वे जानते ही न हों।” नारद समझ गये कि कृष्ण एक ही समय दोनों महलों में उपस्थित थे और विभिन्न कार्य कर रहे थे अतएव “वे भगवान् के कार्यों पर अत्यधिक आश्चर्य करके चुपचाप उस महल से चलते बने।”

तत्राप्यचष्ट गोविन्दं लालयन्तं सुतान्शिशून् ।

ततोऽन्यस्मिन्गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; अपि—और; अचष्ट—देखा; गोविन्दम्—भगवान् कृष्ण को; लालयन्तम्—दुलारते हुए; सुतान्—बच्चों को; शिशून्—छोटे; ततः—तब; अन्यस्मिन्—दूसरे; गृहे—महल में; अपश्यत्—देखा (कृष्ण को); मज्जनाय—स्नान करने के लिए; कृत-उद्यमम्—तैयारी करते हुए।

इस बार नारदजी ने देखा कि भगवान् कृष्ण अपने छोटे छोटे बच्चों को वत्सल पिता की तरह दुलार रहे थे। वहाँ से वे अन्य महल में गये और उन्होंने देखा कि भगवान् कृष्ण स्नान करने के लिए तैयारी कर रहे हैं।

तात्पर्य : उपर्युक्त भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत भगवान् श्रीकृष्ण से लिया गया है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती टीका करते हैं कि नारद प्रायः जितने महलों में गये भगवान् कृष्ण ने वहाँ वहाँ उनकी पूजा की और सम्मान प्रदान किया।

जुह्वन्तं च वितानाग्नीन्यजन्तं पञ्चभिर्मखैः ।

भोजयन्तं द्विजान्क्वापि भुञ्जानमवशेषितम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

जुह्वन्तम्—आहुति डालते; च—तथा; वितान-अग्नीन्—यज्ञ अग्नि में; यजन्तम्—पूजा करते हुए; पञ्चभिः—पाँच; मखैः—अनिवार्य अनुष्ठानों (यज्ञ) द्वारा; भोजयन्तम्—खिलाते हुए; द्विजान्—ब्राह्मणों को; क्व अपि—कहीं; भुञ्जानम्—खाते हुए; अवशेषितम्—उच्छिष्ट ।

एक स्थान पर भगवान् यज्ञ-अग्नियों में आहुतियाँ डाल रहे थे, दूसरे में पाँच महायज्ञों द्वारा पूजा कर रहे थे, अन्यत्र वे ब्राह्मणों को भोजन करा रहे थे तो कहीं पर ब्राह्मणों के द्वारा छोड़े गए भोजन को खा रहे थे ।

तात्पर्य : पंच महायज्ञों की परिभाषा इस प्रकार है पाठो होमश्च चातिथीनां सपर्या तर्पणं बलिः—वेद पाठ, यज्ञअग्नि में आहुति डालना, अतिथियों की सेवा, पूर्वजों को बलि देना तथा सामान्य जीवों को (अपने भोजन में से) एक भाग देना ।”

श्रील प्रभुपाद ने इन यज्ञों के बारे में निम्नलिखित टीका की है : “अन्य महल में श्रीकृष्ण गृहस्थों के लिए आवश्यक पंचयज्ञ नामक यज्ञ करते हुए पाये गये । इस यज्ञ को पंचसूना के नाम से भी जाना जाता है । ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से प्रत्येक व्यक्ति, विशेष रूप से गृहस्थ, पाँच प्रकार के पापकर्म करता है । जब हम घड़े से जल लेते हैं, तो हम उसमें रहने वाले अनेक कीटाणुओं का वध करते हैं । उसी तरह जब हम चक्की चलाते हैं अथवा भोजन करते हैं, तो हम अनेक कीटाणुओं का वध करते हैं । झाड़ू लगाते समय अथवा आग जलाते समय भी हम अनेक कीटाणुओं का वध करते हैं । जब हम सड़क पर चलते हैं, तो हम अनेक चीटियों तथा अन्य कीड़ों-मकोड़ों का वध कर जाते हैं । चेतन अथवा अचेतन अवस्था में हम समस्त विभिन्न गतिविधियों में हत्या करते हैं । इसलिए इन पापकर्मों के फल से मुक्ति पाने के लिए पंचसूना यज्ञ करना प्रत्येक गृहस्थ के लिए अनिवार्य है ।”

इस श्लोक की टीका करते हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती पुनः इंगित करते हैं कि भगवान् कृष्ण के महलों में दिन के विभिन्न समय घटित हो रहे थे । नारद ने अग्नियज्ञ—प्रातःकालीन अनुष्ठान—कराते तथा लगभग उसी समय भगवान् कृष्ण को ब्राह्मणों को भोजन कराते तथा उनके उच्छिष्ट को ग्रहण करते देखा—जो दोपहर के कार्य हैं ।

क्वापि सन्ध्यामुपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाग्यतम् ।

एकत्र चासिचर्माभ्यां चरन्तमसिवर्त्मसु ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

क्व अपि—कहीं; सन्ध्याम्—संध्याकालीन अनुष्ठान; उपासीनम्—पूजा करते; जपन्तम्—मौन होकर जप करते; ब्रह्म—वैदिक मंत्र (गायत्री); वाक्-यतम्—अपनी वाणी को संयत करते; एकत्र—एक स्थान में; च—तथा; असि—तलवार; चर्माभ्याम्—तथा ढाल को; चरन्तम्—चलाते; असि-वर्त्मसु—तलवार चलाने के अभ्यास हेतु नियत दालानों में।

कहीं पर भगवान् मौन रहकर तथा मन ही मन गायत्री मंत्र का जप करते हुए संध्याकालीन पूजा के लिए अनुष्ठान कर रहे थे तो कुछ स्थानों पर जो तलवार के अभ्यास के लिए नियत थे, वे तलवार-ढाल चला रहे थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार सन्ध्याम् उपासीनम् शब्द संध्याकालीन अनुष्ठान के सूचक हैं जबकि असि-चर्माभ्याम् चरन्तम् तलवार चलाने के अभ्यास के सूचक हैं जिसे अधिक सुबह किया जाता है।

अश्वैर्गजै रथैः क्वापि विचरन्तं गदाग्रजम् ।

क्वचिच्छयानं पर्यङ्के स्तूयमानं च वन्दिभिः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अश्वैः—घोड़ों पर; गजैः—हाथियों पर; रथैः—रथों पर; क्व अपि—कहीं; विचरन्तम्—सवारी करते; गद-अग्रजम्—गद के बड़े भाई, कृष्ण को; क्वचित्—कहीं; शयानम्—लेटे हुए; पर्यङ्के—पलंग में; स्तूयमानम्—प्रशंसा किये जाते; च—तथा; वन्दिभिः—वन्दीजनों (भाटों) द्वारा।

एक स्थान पर भगवान् गदाग्रज घोड़ों, हाथियों तथा रथों पर सवारी कर रहे थे और दूसरे स्थान पर वे अपने पलंग पर लेटे थे तथा भाट उनकी महिमा का गायन कर रहे थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि घोड़ों तथा हाथियों पर सवारी करना दोपहर का कार्य है, जबकि लेटना रात के दूसरे पहर का।

मन्त्रयन्तं च कस्मिंश्चिन्मन्त्रिभिश्चोद्धवादिभिः ।

जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याबलावृतम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

मन्त्रयन्तम्—विचार-विमर्श करते; च—तथा; कस्मिंश्चित्—कहीं; मन्त्रि-भिः—मंत्रियों के साथ; च—तथा; उद्धव-आदिभिः—उद्धव तथा अन्य; जल—जल में; क्रीडा—खिलवाड़ में; रतम्—व्यस्त; क्व अपि—कहीं; वार-मुख्या—राजसी नृत्यांगनाओं द्वारा; अबला—तथा अन्य स्त्रियों के; वृतम्—साथ में।

कहीं वे उद्धव तथा अन्य राजमंत्रियों से सलाह-मशविरा कर रहे थे तो कहीं पर वे अनेक नृत्यांगनाओं तथा अन्य तरुणियों से घिरकर जल-क्रीड़ा कर रहे थे।

तात्पर्य : यह भावार्थ श्रील प्रभुपाद द्वारा रचित भगवान् श्रीकृष्ण पर आधारित है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार, भगवान् कृष्ण अपने मंत्रियों से संध्या के लगभग मिले और जल-क्रीड़ा की लीला दोपहर के बाद हुई।

कुत्रचिद्दिवजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलङ्कृताः ।
इतिहासपुराणानि शृण्वन्तं मङ्गलानि च ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

कुत्रचित्—कहीं; द्विज—ब्राह्मणों को; मुखेभ्यः—सर्वश्रेष्ठ; ददतम्—देते हुए; गाः—गौवें; सु—अच्छी तरह; अलङ्कृताः—आभूषित; इतिहास—प्राचीन इतिहास; पुराणानि—तथा पुराणों को; शृण्वन्तम्—सुनते हुए; मङ्गलानि—शुभ; च—तथा।

कहीं वे उत्तम ब्राह्मणों को भलीभाँति अलंकृत गौवें दान दे रहे थे और कहीं वे महाकाव्य के इतिहासों तथा पुराणों का शुभ वृत्तान्त सुन रहे थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि गौवों का दान प्रातःकाल दिया जाता है, जबकि इतिहास श्रवण अपराह्न में सम्पन्न होता है।

हसन्तं हासकथया कदाचित्प्रियया गृहे ।
क्वापि धर्मं सेवमानमर्थकामौ च कुत्रचित् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

हसन्तम्—हँसते हुए; हास-कथया—हँसी-मजाक के वार्तालाप से; कदाचित्—किसी समय; प्रियया—अपनी पत्नी से; गृहे—महल में; क्व अपि—कहीं; धर्मम्—धर्म का; सेवमानम्—अभ्यास करते हुए; अर्थ—आर्थिक विकास; कामौ—इन्द्रिय-तृप्ति; च—तथा; कुत्रचित्—कहीं।

कहीं पर भगवान् कृष्ण किसी एक पत्नी के साथ हास-परिहास करते देखे गये। कहीं और वे अपनी पत्नी समेत धार्मिक-अनुष्ठान के कृत्यों में व्यस्त पाये गये। कहीं कृष्ण आर्थिक विकास के मामलों में तो कहीं शास्त्रों के नियमानुसार गृहस्थ जीवन का भोग करते पाये गये।

तात्पर्य : उक्त भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत भगवान् श्रीकृष्ण पर आधारित है।

हँसी-मजाक रात के समय किया जाता है, जबकि धार्मिक अनुष्ठान, आर्थिक विकास का कार्य तथा गृहस्थ जीवन का भोग दिन तथा रात दोनों ही में चलता है।

ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम् ।
शुश्रूषन्तं गुरून्क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

ध्यानन्तम्—ध्यान करते हुए; एकम्—एकाकी; आसीनम्—बैठे हुए; पुरुषम्—भगवान् को; प्रकृतेः—भौतिक प्रकृति का; परम्—दिव्य; शुश्रूषन्तम्—क्षुद्र सेवा करते हुए; गुरुन्—अपने से बड़ों की; क्व अपि—कहीं; कामैः—इच्छित; भोगैः—भोग्य वस्तुओं से; सपर्यया—तथा पूजा से।

कहीं वे अकेले बैठे हुए भौतिक प्रकृति से परे भगवान् का ध्यान कर रहे थे और कहीं पर वे अपने से बड़ों को इच्छित वस्तुएँ देकर तथा उनकी आदरपूर्वक पूजा करके उनकी दासोचित सेवा कर रहे थे।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है : “जैसाकि प्रामाणिक ग्रंथों में कहा गया है ध्यान भगवान् विष्णु पर चित्त को एकाग्र करने के लिए किया जाता है। भगवान् कृष्ण स्वयं ही आदि विष्णु हैं किन्तु एक मानव की भूमिका में रहने के कारण अपने व्यक्तिगत व्यवहार द्वारा उन्होंने हमें निश्चित रूप से यह शिक्षा दी कि ध्यान का क्या अर्थ है।”

ध्यान का यह कार्य ब्राह्म मुहूर्त अर्थात् सूर्योदय के पूर्व भोर समय का सूचक है।

कुर्वन्तं विग्रहं कैश्चित्सन्धि चान्यत्र केशवम् ।

कुत्रापि सह रामेण चिन्तयन्तं सतां शिवम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

कुर्वन्तम्—करते हुए; विग्रहम्—युद्ध; कैश्चित्—किसी व्यक्ति से; सन्धिम्—मेल-जोल; च—तथा; अन्यत्र—और कहीं; केशवम्—भगवान् कृष्ण को; कुत्र अपि—कहीं; सह—साथ; रामेण—बलराम के; चिन्तयन्तम्—सोचते हुए; सताम्—साधुओं के; शिवम्—कल्याण हेतु।

एक स्थान पर वे अपने कुछ सलाहकारों के साथ विचार-विमर्श करके युद्धों की योजना बना रहे थे और अन्य स्थान पर वे शान्ति स्थापित कर रहे थे। कहीं पर केशव तथा बलराम मिलकर पवित्र लोगों के कल्याण के विषय में चिन्तन कर रहे थे।

पुत्राणां दुहितृणां च काले विध्युपयापनम् ।

दारैर्वैस्तत्सदृशैः कल्पयन्तं विभूतिभिः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

पुत्राणाम्—पुत्रों के; दुहितृणाम्—पुत्रियों के; च—तथा; काले—उपयुक्त समय पर; विधि—धर्म के अनुसार; उपयापनम्—उन्हें विवाहित करके; दारैः—पत्नियों के साथ; वैरैः—तथा पतियों के साथ; तत्—उनके; सदृशैः—अनुरूप; कल्पयन्तम्—व्यवस्था करते हुए; विभूतिभिः—ऐश्वर्य की दृष्टि से।

नारद ने देखा कि भगवान् कृष्ण अपने पुत्रों तथा पुत्रियों का उचित समय पर उपयुक्त पत्नियों तथा पतियों के साथ विवाह करा रहे हैं और ये विवाहोत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हो

रहे हैं।

तात्पर्य : उक्त भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत भगवान् श्रीकृष्ण पर आधारित है।

यहाँ पर काले शब्द का अर्थ है कि जब भगवान् कृष्ण के पुत्र तथा पुत्रियाँ समुचित आयु की हो गईं तो उनके विवाह की व्यवस्था की गई।

प्रस्थापनोपनयनैरपत्यानां महोत्सवान् ।

वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

प्रस्थापन—विदा करके; उपनयनैः—अगवानी करके; अपत्यानाम्—अपनी सन्तानों के; महा—महान्; उत्सवान्—उछाह; वीक्ष्य—देखकर; योग-ईश्वर—योग के स्वामियों के; ईशस्य—परम प्रभु को; येषाम्—जिसके; लोकाः—लोग; विसिस्मिरे—विस्मित थे।

नारद ने देखा कि किस तरह समस्त योगेश्वरों के स्वामी श्रीकृष्ण ने अपनी पुत्रियों तथा दामादों की विदाई की तथा पुनः महोत्सवों के अवसरों पर उनका घर में स्वागत करने की व्यवस्था की। सारे नागरिक इन उत्सवों को देखकर विस्मित थे।

यजन्तं सकलान्देवान्क्वापि क्रतुभिरूर्जितैः ।

पूर्तयन्तं क्वचिद्धर्मं कूर्पराममठादिभिः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

यजन्तम्—पूजा करते; सकलान्—समस्त; देवान्—देवताओं की; क्व अपि—कहीं; क्रतुभिः—यज्ञों से; ऊर्जितैः—पूरी तरह विकसित; पूर्तयन्तम्—लोकसेवा पूरी करते हुए; क्वचित्—कहीं; धर्मम्—धार्मिक बन्धन; कूर्प—कुओं से; आराम—जन उद्यान; मठ—मठ; आदिभिः—इत्यादि से।

कहीं पर वे विस्तृत यज्ञों द्वारा देवताओं को पूज रहे थे और कहीं वे जनकल्याण कार्य यथा कुएँ, जन उद्यान तथा मठ बनवाकर अपना धार्मिक कर्तव्य पूरा कर रहे थे।

चरन्तं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैन्धवम् ।

घ्नन्तं तत्र पशून्मेध्यान्परीतं यदुपुङ्गवैः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

चरन्तम्—विचरण करते; मृगयाम्—शिकार करने के लिए; क्व अपि—कहीं; हयम्—घोड़े पर; आरुह्य—सवार होकर; सैन्धवम्—सिन्धु देश के; घ्नन्तम्—वध करते हुए; तत्र—वहाँ; पशून्—पशुओं को; मेध्यान्—यज्ञ में बलि के योग्य; परीतम्—घिरकर; यदु-पुङ्गवैः—अत्यन्त वीर यदुओं से।

अन्य स्थान पर वे आखेट पर गये थे। वे अपने सिन्धी घोड़े पर सवार होकर तथा अत्यन्त वीर यदुओं के संग यज्ञ में बलि के निमित्त पशुओं का वध कर रहे थे।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है, “वैदिक नियमों के अनुसार क्षत्रियों को वन में शान्ति बनाये रखने के लिए अथवा यज्ञ में बलि देने के लिए कतिपय अवसरों पर निर्दिष्ट पशुओं का शिकार करने की अनुमति थी। क्षत्रियों को वध करने की इस कला का अभ्यास करने की छूट है क्योंकि उन्हें समाज में शान्ति बनाये रखने के लिए अपने शत्रुओं का निर्ममतापूर्वक वध करना होता है।”

अव्यक्तलिनां प्रकृतिष्वन्तःपुरगृहादिषु ।

क्वचिच्चरन्तं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

अव्यक्त—गुप्त; लिङ्गम्—उनकी पहचान; प्रकृतिषु—अपने मंत्रियों में; अन्तः-पुर—रनिवास के; गृह-आदिषु—आवासों आदि में.; क्वचित्—कहीं; चरन्तम्—विचरण करते; योग-ईशम्—योगेश्वर को; तत्-तत्—उनमें से हर एक का; भाव—मनोभाव; बुभुत्सया—जानने की इच्छा से।

कहीं योगेश्वर कृष्ण वेश बदलकर मंत्रियों तथा अन्य नागरिकों के घरों में यह जानने के लिए कि उनमें से हर कोई क्या सोच रहा है, इधर उधर घूम रहे थे।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् कृष्ण सर्वज्ञ हैं किन्तु राजा की भाँति लीला करते हुए कभी कभी वेश बदलकर अपने राज्य की आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए विचरण करते थे।

अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव ।

योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; उवाच—कहा; हृषीकेशम्—भगवान् कृष्ण से; नारदः—नारद ने; प्रहसन्—हँसते हुए; इव—थोड़ा थोड़ा; योग-माया—उनकी आध्यात्मिक मोहक शक्ति का; उदयम्—प्राकट्य; वीक्ष्य—देखकर; मानुषीम्—मनुष्य की; ईयुषः—धारण करने वाले; गतिम्—चाल-ढाल का।

इस प्रकार भगवान् की योगमाया का यह दृश्य देखकर नारद मुसकाये और तब उन्होंने भगवान् हृषीकेश को सम्बोधित किया जो मनुष्य का आचरण कर रहे थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार नारदमुनि भगवान् की सर्वज्ञता को पूरी तरह समझते थे अतः जब उन्होंने भगवान् को वेश बदलकर अपने मंत्रियों के भाव जानने का प्रयत्न करते देखा तो नारद अपनी हँसी रोक न सके। किन्तु भगवान् के परम पद का स्मरण करते हुए उन्होंने अपनी हँसी को कुछ कुछ रोक लिया।

विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ।
योगेश्वरात्मन्निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

विदाम—हम जानते हैं; योग-माया:—योगशक्तियाँ; ते—तुम्हारी; दुर्दर्शा:—देख पाना असम्भव; अपि—होते हुए भी;
मायिनाम्—महान् योगियों के लिए; योग-ईश्वर—हे योगेश्वर; आत्मन्—हे परमात्मा; निर्भाता:—अनुभूति हुई; भवत्—आपके;
पाद—चरणों की; निषेवया—सेवा से।

[नारद ने कहा] : हे परमात्मा, हे योगेश्वर, अब हम आपकी योगशक्तियों को समझ सके हैं, जिन्हें बड़े बड़े योगी भी मुश्किल से समझ पाते हैं। एकमात्र आपके चरणों की सेवा करने से मैं आपकी शक्तियों का अनुभव कर सका हूँ।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार यह श्लोक इंगित करता है कि ब्रह्मा तथा शिव जैसे बड़े बड़े योगी भी भगवान् की योगशक्ति को पूरी तरह समझ नहीं पाते।

अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाप्लुतान् ।
पर्यटामि तवोद्गायन्लीला भुवनपावनीः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

अनुजानीहि—मुझे जाने की आज्ञा दें, विदा करें; माम्—मुझको; देव—हे प्रभु; लोकान्—लोकों को; ते—तुम्हारे; यशसा—यश से; आप्लुतान्—आप्लावित परिपूर्ण; पर्यटामि—विचरण करूँगा; तव—तुम्हारी; उद्गायन्—जोर जोर से गाते हुए;
लीला:—लीलाएँ; भुवन—सारे लोकों को; पावनी:—पवित्र करने वाली।

हे प्रभु, मुझे जाने की आज्ञा दें। मैं उन लोकों में, जो आपके यश से आप्लावित हैं, ब्रह्माण्ड को पवित्र करने वाली आपकी लीलाओं का जोर जोर से गायन करते हुए विचरण करूँगा।

तात्पर्य : नारद मुनि तक भगवान् कृष्ण की मानव रूप में की जा रही आश्चर्यमयी लीलाओं को देखकर मोहित थे। अतएव वे अनुजानीहि मां देव शब्दों के द्वारा अपने पर्यटन तथा प्रचार के सामान्य कार्य में वापस जाने की अनुमति चाहते हैं। जो कुछ उन्होंने देखा था उससे प्रोत्साहित होकर वे भगवान् श्रीकृष्ण के यश का दूर दूर तक प्रचार करना चाह रहे थे।

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मन्धन्नस्य वक्ताहं कर्ता तदनुमोदिता ।
तच्छिक्षयन्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; धर्मस्य—धर्म का; वक्ता—उपदेशक; अहम्—मैं; कर्ता—करने वाला; तत्—उसका; अनुमोदिता—स्वीकृति देने वाला; तत्—वह; शिक्षयन्—शिक्षा देते हुए; लोकम्—संसार को; इमम्—इस; आस्थितः—स्थित; पुत्र—हे पुत्र; मा खिदः—क्षुब्ध न होना।

भगवान् ने कहा : हे ब्राह्मण, मैं धर्म का उपदेशक, उसका कर्ता तथा अनुमोदनकर्ता हूँ। हे पुत्र, मैं जगत को शिक्षा देने के लिए धर्म का पालन करता हूँ, अतएव तुम विक्षुब्ध मत होना।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि भगवान् कृष्ण नारद के उस आकुलता को दूर करना चाहते थे जिसे उन्होंने भगवान् कृष्ण द्वारा देवताओं की तथा स्वयं की पूजा करते देखकर अनुभव किया था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कृष्ण के भावों की निम्नलिखित व्याख्या देते हैं “जैसाकि मैंने भगवद्गीता में कहा है—*यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः*—महापुरुष जो भी करता है सामान्यजन उसी का अनुसरण करते हैं। इसीलिए मैंने धर्म के नियमों का विस्तार करने के लिए ही आज आपके चरण पखारे हैं। भूतकाल में, अभी मैंने धर्म के नियमों का सीधे उपदेश देने की लीला प्रारम्भ नहीं की थी कि तुमने मेरे द्वारा केशी असुर के मारे जाने पर मेरी स्तुति की थी, किन्तु मैं तुम्हारी विस्तृत स्तुतियों तथा यशोगान को केवल सुनता रहा और तुम्हारा सम्मान नहीं किया। इसे स्मरण करके केवल विचार करो।

तुम मेरे द्वारा आज अपने चरण पखारे जाने और चरणोदक को स्वीकार करने की अनुमति देने को अपराध न मानो? जिस तरह बालक अपने पिता की गोद में बैठे हुए अपने पाँव छुआकर पिता का अपमान नहीं करता उसी तरह, हे पुत्र! तुम भी समझो कि तुमने कोई अपराध नहीं किया।”

श्रीशुक उवाच

इत्याचरन्तं सद्धर्मान्यावनानृहमेधिनाम् ।
तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आचरन्तम्—करते हुए; सत्—आध्यात्मिक; धर्मान्—धर्म के नियमों को; पावनान्—पवित्र करने वाले; गृह-मेधिनाम्—गृहस्थियों के लिए; तम्—उसको; एव—निस्सन्देह; सर्व—सभी; गेहेषु—महलों में; सन्तम्—उपस्थित; एकम्—एक रूप में; ददर्श ह—देखा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार नारद ने हर महल में भगवान् को एक ही स्वरूप में, गृहकार्यों में व्यस्त रहने वालों को शुद्ध करने वाले दिव्य धार्मिक नियमों को सम्पन्न करते देखा।

तात्पर्य : इस श्लोक में शुकदेव गोस्वामी उसी को दुहराते हैं, जो स्वयं भगवान् ने बतलाया है। भगवान् कृष्ण में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, “लोगों को यह शिक्षा देने के लिए कि किस प्रकार भौतिक जगत के बन्धनों से बद्ध होकर भी मनुष्य अपने गृहस्थ जीवन को पवित्र बना सकता है, भगवान्

तथाकथित गृहकार्यों में संलग्न थे। वास्तव में गृहस्थ जीवन के कारण ही मनुष्य इस संसार में जीवित रहने के लिए बाध्य है। किन्तु गृहस्थों पर अत्यन्त कृपालु होने के कारण भगवान् ने साधारण गृहस्थ जीवन को पवित्र करने वाला मार्ग प्रदर्शित किया। कृष्ण समस्त गतिविधियों के केन्द्र हैं अतएव कृष्णभावनाभावित गृहस्थ का जीवन वैदिक आदेशों से ऊपर है और स्वतः पवित्र बन जाता है।”

जैसाकि इस अध्याय के श्लोक २ में कहा गया है, भगवान् द्वारा अनेक महलों में एक ही आध्यात्मिक स्वरूप (एकेन वपुषा) द्वारा सारे कार्य सम्पन्न हो रहे थे, जो एक साथ अनेक स्थानों में दिख रहे थे। नारद को यह दृश्य इसलिए प्रकट कराया गया क्योंकि वे इसे देखना चाहते थे और भगवान् उन्हें दिखाना चाहते थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि द्वारका के अन्य वासी नगर के उसी भाग में कृष्ण को देख सकते थे जहाँ वे रह रहे थे, अन्य स्थानों पर नहीं, भले ही वे किसी काम से वहाँ गये हों। इस तरह भगवान् ने अपने प्रिय भक्त नारद मुनि को अपनी लीलाओं की विशेष झाँकी दिखलाई।

कृष्णस्यानन्तवीर्यस्य योगमायामहोदयम् ।
मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितो जातकौतुकः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

कृष्णस्य—कृष्ण के; अनन्त—असीम; वीर्यस्य—पराक्रम को; योग-माया—ठगने वाली शक्ति की; महा—विस्तृत; उदयम्—अभिव्यक्ति; मुहुः—बारम्बार; दृष्ट्वा—देख लेने के बाद; ऋषिः—ऋषि, नारद; अभूत्—हो गये; विस्मितः—चकित; जातकौतुकः—आश्चर्यपूरित।

असीम शक्ति वाले भगवान् कृष्ण के विस्तृत योग प्रदर्शन को बारम्बार देख लेने के बाद ऋषि चकित एवं आश्चर्य से पूरित हो गये।

इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना ।
सम्यक्सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन् ययौ ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; अर्थ—आर्थिक विकास के लिए उपयोगी वस्तुओं से; काम—इन्द्रिय-तृप्ति के; धर्मेषु—तथा धर्म के; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; श्रद्धित—श्रद्धावान; आत्मना—हृदय वाला; सम्यक्—भलीभाँति; सभाजितः—सम्मानित; प्रीतः—प्रसन्न; तम्—उसको; एव—निस्सन्देह; अनुस्मरन्—सदैव स्मरण करते; ययौ—चले गए।

भगवान् कृष्ण ने नारद का अत्यधिक सम्मान किया और उन्हें श्रद्धापूर्वक आर्थिक समृद्धि, इन्द्रिय-तृप्ति तथा धार्मिक कर्तव्यों से सम्बन्धित उपहार भेंट किये। इस तरह ऋषि पूरी तरह तुष्ट

होकर अनवतर भगवान् का स्मरण करते हुए वहाँ से चले गये।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण में इंगित किया है अर्थकामधर्मेषु वाक्यांश सूचित करता है कि कृष्ण उस सामान्य गृहस्थ की तरह आचरण कर रहे थे, जो आर्थिक विकास, इन्द्रिय-तृप्ति तथा धार्मिक कार्यों में अत्यधिक रुचि रखता है। नारदमुनि भगवान् के उद्देश्य को समझ सके और वे श्रीकृष्ण के आदर्श आचरण से अतीव प्रसन्न हो गए। इस तरह शुद्ध कृष्णभावनामृत से परिबुद्ध होकर वे वहाँ से चले गये।

एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो

नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः ।

रेमेऽप्य षोडशसहस्रवराङ्गानां

सव्रीडसौहृदनिरिक्षणहासजुष्टः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मनुष्य—मनुष्य के; पदवीम्—पथ को; अनुवर्तमानः—अनुसरण करते हुए; नारायणः—भगवान् नारायण; अखिल—हर एक के; भवाय—कल्याण हेतु; गृहीत—प्रकट करके; शक्तिः—शक्तियाँ; रेमे—रमण किया; अङ्ग—हे प्रिय (परीक्षित); षोडश—सोलह; सहस्र—हजार; वर—अति उत्तम; अङ्गानाम्—स्त्रियों के; स-व्रीड—लजीली; सौहृद—तथा स्नेहमयी; निरीक्षण—चितवनों; हास—तथा हँसी से; जुष्टः—तुष्ट।

इस तरह भगवान् नारायण ने सभी जीवों के लाभ हेतु अपनी दैवी शक्तियों को प्रकट करके सामान्य मनुष्यों की चाल-ढाल का अनुकरण किया। हे राजन्, इस प्रकार उन्होंने अपनी उन सोलह हजार वरिष्ठ प्रेयसियों के साथ रमण किया जो अपनी लजीली स्नेहमयी चितवनों तथा मुसकान से भगवान् की सेवा करती थीं।

यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः

कर्माण्यनन्यविषयाणि हरीश्चकार ।

यस्त्वङ्ग गायति शृणोत्यनुमोदते वा

भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

यानि—जो; इह—इस संसार में; विश्व—ब्रह्माण्ड के; विलय—संहार; उद्भव—सृजन; वृत्ति—तथा पालन के; हेतुः—कारण, स्वरूप; कर्माणि—कर्म; अनन्य—अन्य किसी के नहीं; विषयाणि—कार्यक्रम; हरिः—भगवान् कृष्ण ने; चकार—सम्पन्न किया; यः—जो भी; तु—निस्सन्देह; अङ्ग—मेरे प्रिय राजा; गायति—उच्चारण करता है; शृणोति—सुनता है; अनुमोदते—अनुमोदन करता है; वा—अथवा; भक्तिः—भक्ति; भवेत्—उत्पन्न होती है; भगवति—भगवान् के प्रति; हि—निस्सन्देह; अपवर्ग—मोक्ष के; मार्गे—मार्ग में।

भगवान् हरि ही ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन तथा संहार के चरम कारण हैं। हे राजन्, जो भी

उनके द्वारा इस संसार में सम्पन्न अद्वितीय कार्यों के विषय में कीर्तन करता है, सुनता है या केवल प्रशंसा करता है, जिनका अनुकरण करना असम्भव है, वह अवश्य ही मोक्ष के प्रदाता भगवान् के प्रति भक्ति उत्पन्न कर लेगा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने *अनन्य विषयाणि* शब्द के अनेक अर्थ दिये हैं। यह शब्द सूचित करता है कि भगवान् ने द्वारका में ऐसे कार्य सम्पन्न किये जो उनके स्वांशों के लिए भी असामान्य थे, दूसरों का तो कहना ही क्या? अथवा इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि भगवान् ने ये कार्यकलाप अपने शुद्ध अनन्य भक्तों के हेतु सम्पन्न किये। कुछ भी हो, जो भी इन लीलाओं के विषय में सुनता-सुनाता है, वह अवश्य ही कृष्णभावनामृत में लग जाएगा जैसाकि श्रील प्रभुपाद लिखते हैं “निश्चय ही उसे मुक्ति पथ को पार करने में तथा भगवान् के चरणकमलों के अमृत का आस्वादन करने में आसानी होगी।” श्रील प्रभुपाद यह भी इंगित करते हैं कि *अनुमोदते* शब्द यहाँ पर इस बात का सूचक है कि जो “कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचारक का अनुमोदन करता है” वह भी यहाँ पर उल्लिखित लाभ प्राप्त करेगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “नारद मुनि द्वारा द्वारका में भगवान् कृष्ण के महलों को देखना” नामक उनहत्तरवें अध्याय का श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।